International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(5): 310-312

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(5): 310-312
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 04-07-2021
Accepted: 10-08-2021

डॉ0 क्षमा मिश्रा
असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, भदावर विद्या मन्दिर पी0जी0 कॉलेज, बाह, आगरा, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ0 क्षमा मिश्रा
असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, भदावर विद्या मन्दिर पी0जी0 कॉलेज, बाह, आगरा, उत्तर प्रदेश, भारत

वैदिककालीन वास्तु–कला

डॉ0 क्षमा मिश्रा

प्रस्तावना

भारतीय कला तथा सांस्कृतिक परम्परा का आदिकालीन स्रोत वैदिक संहिताएँ तथा उनका अनुवर्ती साहित्य है। ऋग्वेद विश्वसाहित्य का सर्वप्राचीन ग्रंथ है। यजुर्वेद एवं सामवेद उसी के समकक्ष और तत्सम्बन्धी यज्ञ–कृत्यों अनुष्ठान–परक उपयोग और गान के लिए संकलित संहिता ग्रन्थ हैं। इन तीन प्रमुख वेदों का एकत्र नाम 'त्रयी' है। अथर्ववेद इस 'त्रयी' से कुछ अलग ढंग के मंत्रों का संग्रह ग्रन्थ है, जिनका प्रयोग गृह्य कर्मों एवं जीवन के विविध व्यापक क्षेत्रों से सम्बन्धित था; जैसे– शान्ति, स्वस्ति, भारण, उच्चाटन, अभिचार, विवाह, श्राद्ध, शाला निर्माण, चिकित्सा आदि। इनके समुचित अध्ययन, विश्लेषण एवं मूल्यांकन से वैदिक युग में भारतीय संस्कृति और कला के अनुपम विकास को प्रमाणिक ढंग से जाना जा सकता है।

जीवन की भौतिक समृद्धि के सूचक अनेक शिल्प, निर्माण एवं कलात्मक अभिप्रायों का परिचय वैदिक संहिताओं से प्राप्त होता है। गृह के वास्तु–विन्यास एवं निर्माण से सम्बन्धित तथ्य ऋग्वेद में कई जगह देखने को मिलते हैं। ऋग्वेद में घर के लिए अनेक पर्यायों का प्रयोग मिलता है; जैसे– गृह, गय, धामन्, दम, दुरोण, दुर्य, स्थान, सदस्, सद्म, सदन, नृषदन, मान, विमान, द्रय, अयन, शर्म, आयतन, क्षय, श्रय, हर्म्य, ओकस्, वास्तु, वसति, प्रसद्मन्, निवेशन, वेश्म, शाला, नीड, पस्त्या आदि। इन सभी का प्रयोग परवर्ती काल में रहायशी या आवास, भवन के लिए प्रचलित है, जो अर्थ इन प्राचीन सन्दर्भों में भी स्पष्ट है। कभी–कभी सदस् घर की बैठक का भी सूचक है, जिसके लिए ऋग्वेद में सभा, समिति, विदथ आदि शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। कुछ का अर्थ विशेष गृह–प्रकार अथवा घर के किसी सुनिश्चित या सीमित भाग के लिए था। जैसे– हर्म्य घर की ऊपरी मंजिल या अट्टालिका (अटारी) का वाचक ज्ञात होता है।

'वास्तु शब्द का प्रयोग पारिभाषिक अर्थ में भवन या तद्गत स्थान (भूमि) के लिए हुआ है। [1] यहाँ सायणाचार्य ने 'वास्तु' का अर्थ– 'वास्तूनि सुखनिवासयोग्यानि स्थानानि' किया है। इसी सन्दर्भ में घर के आधिष्ठाता देवता को 'वास्तोष्पति' कहा गया है। जिनके लिए ऋग्वेद में दो सूक्त (ऋग्वेद– 7–54 तथा 7–55) मिलते हैं। ऋग्वेद में असुरों के सुदृढ़ 'पुर' या शहर का जिसे अधिकांश विद्वान दुर्ग जैसे नगर निर्माण का द्योतक मानते हैं– अनेक बार उल्लेख है, जिनके विध्वंस का श्रेय इन्द्र देवता को देते हुए उसे पुरन्दर, पुरभिद्, [2] पूर्भिद् [3] आदि नामों से अभिहित किया गया है। वस्तुतः 'पुर' का प्रधान या मूलभूत अर्थ नगर या शहर ही है। एक स्थल पर ऐसे सौ महान 'आयस्' पुरों का कथन है– 'महोभिः शतं पूर्भिरायसीभिः'। [4] आधुनिक समय में आयस् (अयस्) लौह धातु का वाचक है। अतः इससे यह स्पष्ट संकेत मिलते हैं कि उस समय भी भवनों या दुर्ग इत्यादि के निर्माण में लोहे का प्रयोग प्रचुर मात्रा में होता था।

इसके अतिरिक्त अन्यत्र भी पुरों को 'अश्मन्मयीः' अर्थात् पत्थरों से बना हुआ बताया गया है। [5] इससे यह जानकारी मिलती है कि उस समय घरों या नगरों के निर्माण में पत्थर का भी प्रयोग होता था। गृह–वास्तु का विशेष महत्वपूर्ण अंग स्तम्भ या खम्भा, स्थूणा या थूनी थी। इसी दृष्टि से इन्द्र को घर या वास्तु के सर्वोत्तम खम्भे का स्वामी कहा गया है। [6] घर के विभिन्न भागों को खम्भों पर टिकाया जाता था (स्कम्भेन धारयेत्.....ऋग्वेद– 8.41.10)। एक मंत्र में दृढ़ आधार पर खड़े किये गये तीन खम्भों का उल्लेख है; उनके ऊपर त्रिकोनी या ढोलकाकार छत बाँधी जाती थी। [7] स्तम्भ या स्थूणा भलीभाँति नाप–जोख कर दृढ़ता से लगायी जाती थी। [8] कई स्थलों पर तो हजार खम्भों पर टिके भवन या सभा की कल्पना भी मिलती है। [9] उसे ध्रुव और उत्तम भी बताया गया है।

वास्तु कला या भवन निर्माण कला के सम्बन्ध में ऋग्वेद में एक मंत्र का उल्लेख मिलता है जिसमें 'सहस्त्रद्वार गृह' का संकेत किया गया– ''बृहन्तं मानं वरूण स्वधावः सहस्त्रद्वारं जगमा गृहं ते'' (ऋग्वेद 7.88.5)।

बनाये हुए घरों के लिए ऋग्वेद (1.55.6) में 'सदनानि कृत्रिमा' शब्द का प्रयोग हुआ है। भवन निर्माण के लिए 'कृत्रिम' शब्द का प्रयोग विशेष ध्यातव्य है। इस शब्द के प्रयोग से यह प्रमाणित होता है कि तत्कालीन समय में गृहों या भवनों का निर्माण होता था। वैसे ऋग्वेद में कई जगह भवन–निर्माण की सामग्री में लौह (अयस्) एवं अश्म (पत्थर) के प्रयोग की सूचना मिलती है किन्तु कई जगह मिट्टी से निर्मित घरों का भी उल्लेख हुआ है, जैसे– 'सद्मपार्थिवम्,' [10] 'मृन्मयं गृहम्'। [11] जो स्पष्टतः उनकी भित्तियों के स्वरूप से सम्बन्धित है।

वैदिक साहित्य में वास्तुकला के अन्तर्गत ईंटों के प्रयोग का भी उल्लेख मिलता है। इसके लिए वेद तथा उपनिषदों में 'इष्ट' या 'इष्टका' शब्द का प्रयोग हुआ है। [12] ईंट का प्रयोग प्रमुखतः यज्ञशाला निर्माण के लिए ही किया जाता था। वैदिक काल में गृह–निर्माण में ईंट के प्रयोग के कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिले हैं। किन्तु इससे यह अवश्य प्रमाणित होता है कि उस समय के लोगों को भी 'ईंट' का ज्ञान था। यज्ञशाला निर्माण एवं अग्निचयन प्रक्रिया में ईंटों का महत्वपूर्ण स्थान था। ईंटों के स्वरूप के सम्बन्ध में दो प्रकार की ईंटों का संकेत मिलता है– 1. कच्ची ईंट, 2. पक्की ईंट। [13] 'इष्टापूर्त' इन दोनों प्रकार की ईंटों से होने वाली पूजाओं के सम्मिलित रूप का नाम था। जैसे अस्थि पर माँस होता है वैसे ही इष्टका–चयन पर पुरीष अर्थात् लेप (गारा, पलस्तर) चढ़ाते हैं। [14] गारे से बनी ईंट के लिए 'शादा' शब्द भी प्रयुक्त हुआ है।

इसके अतिरिक्त वास्तुकला में काष्ठ या लकड़ी का भी प्रयोग होता था। जो मुख्यतः खम्भों के रूप में प्रयोग में लायी जाती थी। इसके लिए 'यूपदारू' शब्द का प्रयोग किया जाता था।

सामान्य वासगृह या घर के अन्तर्गत बैठक (सदस्), यज्ञशाला (अग्निशरण), शयन स्थान (तल्प), गोष्ठ, वाहनों का स्थान आदि कई भाग ज्ञात होते थे। घर के भीतरी आँगन या अजिर का उल्लेख महत्वपूर्ण है। [15] अथर्ववेद के दो शाला–सूक्त (9–3, 3–12) शाला या गृह निर्माण सम्बन्धी विवरणों की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल ने उनमें आये पारिभाषिक शब्दों की सुचारू व्याख्या की है, जिससे वास्तु के अनेक तथ्य पहली बार शास्त्रीय सन्दर्भ में सामने आये हैं। (द्रष्टव्य है– भारतीय कला, द्वितीय संस्करण–1977, पृ0 51–54)।

शतपथ ब्राह्मण [16] में सदस् या यज्ञसभा के दो द्वार (पूर्व तथा पृष्ठ भाग में), ऊपर बनी छत (छदिस्), सम्मुख भाग में (तोरण के रूप में निर्मित) दो ऊँचे स्तम्भ, अग्रभाग तथा सम्मित भित्ति आदि का सटीक उल्लेख है। स्थल की सफाई, उस पर लोनी मिट्टी और सिकता (बालू) की तह डालना, दिशा–निर्धारण, क्रम से भूमि का स्वीकार, निर्धारण, चारदीवारी (परिश्रित) की स्थापना, खात या खनन आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है।

इसी ब्राह्मण [17] में श्मशानों के स्वरूप की चर्चा करते हुए बताया गया है कि दैवी प्रजाओं के श्मशान 'चतुःस्त्रक्ति' (चौकोर) एवं आसुरी प्राच्य लोगों के 'परिमण्डल' (वर्तुलाकार, गोल) होते हैं। उनका विन्यास पूर्व एवं दक्षिण के बीच अवान्तर दिशा की ओर होता है क्योंकि पितृलोक का उधर ही द्वार है। आसुरी प्राच्य श्मशान की तुलना चमू या कटोरे से की गई जो उसकी परवर्ती स्तूप वास्तु से समानता का स्पष्ट संकेत है। साथ ही उसे 'परिश्रित' या घेरने वाले पत्थरों से वेष्टित किये जाने का भी कथन है। ध्यातव्य है कि प्राचीन टीकाकार हरिस्वामी ने वर्तुलाकार समाधि स्थान की व्याख्या स्तूप के रूप में ही की है– (परिमण्डलानि स्तूपाख्यानि)।

वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार– ''स्तूप की कल्पना ऋग्वेद में पाई जाती है। वहाँ अग्नि की उठती ज्वालाओं को 'स्तूप' कहा गया है (ऋग्वेद 7–2–11)। वितान लेकर फैले हुए वृक्ष के साथ स्तूप की तुलना की गई है (ऋग्वेद 1–24–7)। 'हिरण्यस्तूप' का शब्दार्थ था सोने का थूहा या ढेर। वैदिक कल्पना के अनुसार सूर्य हिरण्यस्तूप है, जिसकी सुनहली किरणें चारों ओर स्तूप के आकार में फैली हुई हैं।'' शतपथ ब्राह्मण (1–6–3–1) का कथन है कि अग्नि ही देवों का हिरण्यस्तूप है–

'अग्निर्देवानां हिरण्यस्तूपः'।
यजुर्वेद (25–2) में 'रेष्मन्'

(महीधर के अनुसार तूफान, प्रलय) के लिए स्तूप का समर्पण बताया गया है (रेष्माणं स्तूपेन)। यहाँ स्तूप के स्थायित्व एवं दृढ़ता तथा बृहद् आकार की ओर स्पष्ट संकेत है। यजुर्वेद (35–15) में सम्भवतः स्तूप रचना का ही वास्तुगत उल्लेख है, जहाँ मृतक की प्रतिष्ठा (समाधि) 'परिधि' या पर्वत द्वारा बताई गई है। बुद्ध ने स्तूप परम्परा की प्राचीनता एवं चक्रवर्ती के मृतक–संस्कार से उसका सम्बन्ध बताया है। जैन एवं बौद्ध सम्प्रदायों ने सम्भवतः इन्हीं वैदिक विचारों को उपनाते हुए स्तूप–समाधि एवं उसकी पूजा को व्यापक रूप में अपनाया।

गृह्यसूत्रों में प्रतिपादित गृह निर्माण के धार्मिक कृत्यों के सन्दर्भ में रहायशी भवन के लिए कतिपय परम्परागत प्रचलनों एवं विधानों का उल्लेख है। ऐसा निर्देश पाया जाता है कि गृह वास्तु के लिए अलग, खुला हुआ, समतल (सम), ढहनें की शक से रहित (अविभ्रंशि) एवं घास वाला स्थान हो, जिसके पूर्व या उत्तर में जल उपलब्ध रहे। ब्राह्मण के लिए सफेद मिट्टी वाली, क्षत्रिय एवं वैश्य के लिए क्रमशः लाल और काली मिट्टी वाली भूमि होनी चाहिए। चौकोर (शादा–सम्मित) एवं गोल (मण्डल) आकार का भूमिखण्ड हो, जिसमें प्रवेश सुगम हो। पूर्व, उत्तर एवं दक्षिण में द्वार का विधान, किन्तु पश्चिम अर्थात् भूमि के पृष्ठभाग में द्वार का निषेध। उनका विन्यास ऐसा हो कि घर का अंतरंग दृश्य न हो। वास्तु होम, दिशाओं का निर्धारण उनके अधिपति देवों को बलि दी जाए– पुरस्तात् (इन्द्र), दक्षिण (यम), पश्चिम (वरूण) तथा उत्तर (महाराज) एवं अवान्तर दिशाएँ अधः (वासुकि) एवं ऊर्ध्व (ब्रह्मा) इत्यादि। तैत्तिरीय संहिता में कूप्य, वास्तव्य, वास्तुप आदि व्यावसायिकों का भी उल्लेख मिलता है, जो सम्भवतः कुआँ बनाने वाले और वास्तु का काम करने वाले कारीगरों के नाम थे।

वैदिक समय में भवनों अथवा गृहों के अलंकरण का भी संकेत मिलता है। ऋग्वेद में किसी भोज या समृद्ध शासक के वेश्म (निवास स्थान) की शोभा का वर्णन उपमा की सहायता अत्यन्त ही मनोहर ढंग से किया गया है–

'भोजस्य इदं पुष्करिणीव वेश्म परिष्कृतं देवमानेव चित्रम्' [18]

अर्थात् भोज का यह घर पुष्करिणी की भाँति परिष्कृत (अलंकृत) एवं देवमान (विमान या पूजागृह, देवगृह) की भाँति चित्र (विलक्षण, अद्भुत) है।

संदर्भ

1. ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै..... (ऋग्वेद 1–154–6)
2. वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणांसत्रं सोम्यानाम्।
3. द्रप्सो भेत्ता पुरां शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा।। (ऋग्वेद 8–17–14)
4. (ऋग्वेद 10–47–4)
5. (ऋग्वेद 7–3–7)
6. शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत्।
7. दिवोदासाय दाशुषे।। (ऋग्वेद 4–30–20)
8. चास्कम्भ चित् कम्भेन स्कम्भीयान्..... (ऋग्वेद 10–111–5)
9. त्रयः स्कम्भासः स्कभितासः.....(ऋग्वेद 1–34–2)
10. स्थूणेव सुमिता दृंहत, द्यौः..... (ऋग्वेद 5–45–2)
11. (ऋग्वेद 2–41–5) तथा (ऋग्वेद 5–62–6)
12. ऋग्वेद 1–38–10 एवं 5–87–7
13. ऋग्वेद 5–89–1

14. लोकादिमग्निं तमुवाच तस्मै या इष्टका यावतीर्वा यथा वा (कठोपनिषद् 1–1–15) एवं (ऋग्वेद 1–162–5)
15. यज्ञेन वा इष्टी, पक्वेन पूर्ती–तैत्तिरीय संहिता– 1–7–3–3
16. तैत्तिरीय संहिता– 5–2–3.7
17. (ऋग्वेद 7–11–2) एवं (ऋग्वेद 1–138–2)
18. शतपथ ब्राह्मण 7.1–1–12 से आगे
19. शतपथ ब्राह्मण 13.8.1–5
20. (ऋग्वेद 10–107–10)